प्रथम अध्याय

chapter-1

बौद्ध - परम्परा का संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय

1) पूर्व कथन :-

एक तो, बौद्ध - परम्परा अत्यन्त प्राचीन है, जिसका ढाई हजार साल का इतिहास है । दूसरे, बौद्ध - धर्म विश्व - धर्म के रूप में मान्यता प्राप्त धर्म है । श्रीलंका, बर्मा, इण्डोनेशिया, जापान, कम्बोडिया, चीन, नेपाल, भूटान आदि देशों में इसका पालन आज भी हो रहा है । अत: इन क्षेत्रों की सभी भाषाओं में इसका न्यूनाधिक साहित्य उपलब्ध है । तीसरे, इसके शोधात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययनों की एक दीर्घ परम्परा है । इस सबके फलस्वरूप देशी-विदेशी भाषाओं में इसका विशाल वाङ्मय अस्तित्व में आया है । इस स्थिति में इसकी दीर्घ - परम्परा का विस्तृत अथवा समुचित परिचय किसी भी शोध-ग्रंथ के एक या दो अध्यायों में दे पाना सम्भव नहीं है । अत: यहाँ इसके परम्परागत इतिहास की एक संक्षिप्त रूप-रेखा ही दी जा रही है, वह भी इसके भारतीय भू-खण्ड के इतिहास तक परिसीमित है ।

2) प्रवर्त्तक :-

बौद्ध साहित्य में कुछ ऐसे विधान है, जो इस धर्म को बुद्ध से प्राचीन मानने की सम्भावना को जन्म देते हैं । यथा - (1) भगवान बुद्ध ने एक प्रसंग में स्वयं को दीपंकर बुद्ध की वंश परम्परा से बताया है ।[1] इससे सन्देह होता है कि भगवान बुद्ध से भी पहले दीपंकर नाम के कोई बुद्ध हुए होंगे । (2) बौद्ध-साहित्य में पाँच ध्यानी बुद्धों के नाम आते हैं - वैरोचन, रत्नसम्भव, अमिताभ, अमोघसिद्धि एवं अक्षोभ्य ।[2] जिन्हें कहीं-कहीं पूर्व-बुद्ध भी कहा गया है ; और (3) कतिपय

1- दे0 आचार्य नरेन्द्रदेव, "बौद्ध - धर्म - दर्शन" (पृ0 18)

2- डॉ0 गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, "बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास - (पृ0 466)

ग्रन्थों में बुद्ध को चौबीसवाँ अथवा अन्तिम तीर्थंकर बताया गया है ।[1] इन कथनों से सन्देह होता है कि कहीं बौद्ध परम्परा गौतम बुद्ध से भी प्राचीन तो नहीं ? किन्तु दूसरी ओर "महावग्ग विनय पिटक" में कहा गया है कि - "भगवान बुद्ध ने वाराणसी के ऋषिपत्तन मृगदाव में सर्वप्रथम यह अद्वितीय "धर्म-चक्र" चलाया । जिस "धर्म-चक्र" को पहले कभी किसी श्रमण ने या ब्राह्मण ने या किसी देवता ने, या मार ने या किसी और ने इस लोक में नहीं चलाया था ।"[2] इससे फलित होता है कि गौतम बुद्ध ही इसके प्रथम प्रवर्त्तक थे ।

सामान्य मान्यता भी शाक्य-मुनि सिद्धार्थ को ही बौद्ध - धर्म का प्रवर्त्तक मानती है । वर्तमान में उपलब्ध साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में यही समुचित भी है । अतः शाक्य-मुनि को इस परम्परा का प्रवर्त्तक मानकर आगे उनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है ।

3: शाक्य-मुनि का संक्षिप्त जीवनवृत्त :-

गौतम बुद्ध का बचपन का नाम सिद्धार्थ था । उनका जन्म कतिपय विद्वानों के अनुसार प्राचीन कोशल जनपद के प्रधान नगर कपिलवस्तु में, शाक्यगण - राज्य के लुम्बिनी नामक वन में, ई0पू0 563 में हुआ था ।[3] इनकी माता का नाम महामाया व पिता का नाम शुद्धोदन था । जन्म के कुछ समय उपरान्त ही महामाया का देहावसान होने के कारण इनका लालन-पालन इनकी विमाता रानी प्रजावती ने किया ।[4] उन्नीस वर्ष की अवस्था में इनका विवाह देवदह की कोलियवंश की राजकुमारी यशोधरा से हुआ । समयानुसार उन्हें राहुल नामक पुत्र की प्राप्ति हुई । बौद्ध-साहित्य के अनुसार

1- दे0 आचार्य बलदेव उपाध्याय, "बौद्ध - दर्शन मीमांसा" - [पृ0 4]
2- सं0 डॉ0 चन्द्रधर शर्मा, सौगात सिद्धान्त सार संग्रह - [पृ0 92]
3- आचार्य बलदेव उपाध्याय, बौद्ध - दर्शन मीमांसा - [पृ0 6]
4- आचार्य बलदेव उपाध्याय, बौद्ध - दर्शन मीमांसा - [पृ0 6]

रोगी, वृद्ध, मृतक व संन्यासी को देखकर, और वैराग्य के प्रति स्वाभाविक चित्तवृत्ति होने से, 29 वर्ष की अवस्था में उन्होंने गृह-त्याग किया। उनका यह गृह-त्याग बौद्ध साहित्य में "महाभिनिष्क्रमण" कहा गया है।

गृह-त्याग के उपरान्त सिद्धार्थ उपयुक्त गुरु की खोज में कोशल व मगध के जंगलों में घूमते रहे। इन्हीं जंगलों में घूमते हुए उन्हें "आराड़-कालाम" नामक गुरु का साक्षात्कार हुआ।[1] जिसने उन्हें सांख्य-योग के अनुसार आध्यात्मिक ज्ञान का मार्ग दिखाया, किन्तु छः वर्ष के कठोर-तप के बाद भी जब उन्हें इच्छित ज्ञान का लाभ न हुआ तो उन्होंने इस मार्ग को अपने अनुकूल न पाकर छोड़ दिया। अन्त में "गया" के पास "उरुवेला" में वट-वृक्ष के नीचे, जब वे ध्यानावस्था में थे, उन्हें पहली बार "सम्बोधि" प्राप्त हुई। जिसमें उन्हें चार "आर्य सत्यों" का ज्ञान प्राप्त हुआ। कतिपय विद्वानों के अनुसार यह घटना ई०पू० 528 में घटित हुई। तब गौतम बुद्ध की आयु 35 वर्ष की थी। यहीं से उन्हें बुद्ध [प्रबुद्ध, जागृत] कहा जाने लगा। इसके बाद उन्होंने अपने धर्म का पहला उपदेश "सारनाथ" काशी के पास "ऋषिपत्तन" मृगदाव में पंचवर्गीय भिक्षुओं को दिया। जिसे बौद्ध-साहित्य में "धर्मचक्र प्रवर्त्तन" कहा जाता है। परवर्ती बौद्ध साहित्य में इसे "प्रथम धर्मचक्र प्रवर्त्तन" भी कहा गया है।

अपनी शेष आयु गौतम बुद्ध ने अपने धर्म के प्रचार-प्रसार में व्यतीत की।

भगवान बुद्ध 80 वर्ष की आयु तक जीवित रहे। इस प्रकार उन्होंने लगभग 45 वर्ष तक अपने धर्म का प्रचार किया। "कुसिनारा [कसिया] के शालवन में उनका परिनिर्वाण हुआ।"[2] कतिपय विद्वानों के अनुसार यह घटना ई०पू० 543 में घटित हुई।[3] इसे बौद्ध साहित्य में भगवान बुद्ध का "महापरिनिर्वाण" कहा गया है।

1- आचार्य बलदेव उपाध्याय, बौद्ध - दर्शन मीमांसा - [पृ० 6]
2- आचार्य नरेन्द्रदेव, बौद्ध - धर्म - दर्शन - [पृ० 10]
3- दे० आचार्य बलदेव उपाध्याय, बौद्ध दर्शन मीमांसा [पृ० 7]

भगवान बुद्ध ने अपने उपदेश प्रचलित लोक-भाषा में दिये । उनके तेजस्वी व्यक्तित्व और लोकभाषा में दिये गये उपदेशों का तत्कालीन जनता पर व्यापक प्रभाव पड़ा । उनके जीवनकाल में ही अनेक लोगों ने इस धर्म में दीक्षा ली ।

बुद्ध भगवान के उपदेशों में मुख्य रूप है - §1§ चार आर्य - सत्य, §2§ आर्य अष्टांगिक मार्ग, §3§ द्वादश निदान, §4§ पंचशील एवं §5§ चार ब्रह्म विहार आदि का समावेश है । जिन पर हम आगे के अध्याय में विचार करेंगे ।

4§ मूल बौद्ध - साहित्य :-

यद्यपि अपने जीवन काल में गौतम बुद्ध ने अपने सारे उपदेश मौखिक दिये थे, तो भी उनके शिष्य उनके जीवन काल में ही उन्हें कंठस्थ कर लिया करते थे ।[1] कालान्तर में बुद्ध के शिष्यों ने उनके इन्हीं वचनों को संग्रहित किया व त्रिपिटकों में संजोया । इन त्रिपिटकों के नाम हैं - §1§ विनय-पिटक, §2§ सुत्त - पिटक और §3§ अभिधम्म पिटक ।

आज जो त्रिपिटक साहित्य बुद्ध वचन के रूप में मान्य है, वह "सिंहल में राजा वट्टगामणि के शासन काल में"[2], बुद्ध के परिनिर्वाण के बहुत बाद, लगभग प्रथम शताब्दी में लिपिबद्ध किया गया । यदि हम बुद्ध भगवान के निर्वाण को ई0पू0 543 मानकर चलते हैं तो त्रिपिटक साहित्य बुद्ध के महापरिनिर्वाण के लगभग 600 §छः सौ साल§ बाद लिखा गया ।

5§ भगवान बुद्ध के प्रमुख शिष्य :-

जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है, तथागत ने अपने धर्म का पहला उपदेश पंचवर्गीय भिक्षुओं - §1§ आज्ञात कौडिन्य, §2§ वप्प, §3§ भद्दिय,

---

1- म0म0 राहुल सांकृत्यायन, बुद्धचर्या - §पृ0 5§

2- डॉ0 गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास - §पृ0 6§

(4) महानाम तथा (5) अश्वजित - को दिया ।[1] भगवान बुद्ध के प्रिय शिष्यों में - आनन्द, उपालि, शारिपुत्र तथा महाकाश्यप आदि की प्रसिद्धि है । उन्होंने अपने जिन प्रमुख शिष्यों को अलग-अलग भिक्षु वर्गों का प्रमुख बनाया था[2], उनके नाम इस प्रकार हैं - शारिपुत्र, अनिरुद्ध, महाकाश्यप, पुन्नमन्तानिपुत्र, राहुल, महाकाच्चायन, आनन्द, उपालि तथा महामोग्गलायन आदि । इनके अतिरिक्त बुद्ध के शिष्य - शिष्याओं में अनाथ पिण्डिक, आम्रपालि, विशाखा आदि के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं ।

6) संघ की स्थापना एवं संरचना :-

धर्म चक्र - प्रवर्तन के अपने अभियान में सर्वप्रथम बुद्ध भगवान ने पंचवर्गीय भिक्षुओं को अपना शिष्य बनाकर "बौद्ध संघ" की नींव डाली । इसके बाद "वाराणसी के श्रेष्ठिपुत्र यश और उनके मित्र विमल, सुबाहु, पूर्णजित और गवाम्पति तथा उनके अन्य पचास मित्रों के प्रव्रज्या ग्रहण करने पर संघ में तथागत के अतिरिक्त साठ भिक्षु हो गये, जो सब अर्हत् थे ।[3] कालान्तर में गौतमी की प्रार्थना व आनन्द के अनुरोध पर भगवान बुद्ध ने संघ में स्त्रियों का समावेश करने की अनुमति दे दी । धीरे-धीरे स्त्रियों की संख्या भी इतनी हो गई कि भिक्षु -संघ के समान्तर भिक्षुणी-संघ की स्थापना की गयी । इस प्रकार प्रारम्भ में बौद्ध-संघ के दो विभाग सामने आये - भिक्षु संघ और भिक्षुणी संघ । आगे जब बुद्ध भगवान के अनुयायियों ने उनकी आज्ञा पाकर गृहस्थों को बौद्ध धर्म में दीक्षित करना प्रारम्भ कर दिया, तब उपासक वर्ग और उपासिका वर्ग भी अस्तित्व

1- दे० डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, बौद्धधर्म के विकास का इतिहास - (पृ० 133)

2- दे० डॉ० सरला त्रिगुणायक, मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव - (पृ० 54)

3- डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, बौद्धधर्म के विकास का इतिहास - (पृ० 133)

में आये, और इस प्रकार कुल मिलाकर चार परिषदों[1] - ॥1॥ भिक्षु - परिषद, ॥2॥ भिक्षुणी - परिषद, ॥3॥ उपासिका - परिषद, ॥4॥ उपासक-परिषद को संयोजित करके बौद्ध-संघ की संरचना पूरी हुई। इन चारों परिषदों में सर्वाधिक महत्व भिक्षु-परिषद् का था। यहाँ तक कि भिक्षुणी - परिषद् भी उनके अधीन थी और उपासकों की दोनों परिषदें भी उनके नियन्त्रण में थीं।

बौद्ध - संघ की संरचना एवं कार्य-प्रणाली में भगवान बुद्ध ने वैशाली के लिच्छवियों के राजनीतिक - संघ की लोक - तांत्रिक प्रणाली को आधार बनाया था।[2]

भिक्षुओं को भगवान बुद्ध ने अलग-अलग क्षेत्रों में जाकर अपनी-अपनी भाषा में धर्म-प्रचार की छूट दी थी। इससे संघ का आश्चर्यजनक प्रसार हुआ। संघ में नाना वर्गों के लोगों का समावेश हुआ। एकद्वीय समृद्ध जनों ॥राजाओं एवं धनिकों॥ ने अपार धन-राशि का दान देकर संघ की आर्थिक सहायता की। जिनमें अनाथ पिण्डिक, बिम्बिसार, प्रसेनजित आदि के नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। स्त्रियों में विशाखा, आम्रपालि आदि के आर्थिक सहयोग का विशेष वर्णन भी मिलता है। इस प्रकार यह धर्म बुद्ध के जीवनकाल में ही विस्तृत क्षेत्र में प्रभावशाली बन गया। हजारों की संख्या में लोगों ने सद्धर्म की दीक्षा ली, जो सौगत अथवा शाक्य-पुत्रीय कहलाये।[3]

7॥ संघ में मत-भेद :-

जब तक भगवान बुद्ध जीवित थे तब तक संघ के भीतर विरोध का स्वर प्रबलवेग से नहीं उठने पाया था, किन्तु मतभेदों के बीज तब भी वहाँ विद्यमान थे। जिसके साक्ष्य हमें बौद्ध साहित्य में ही मिल जाते हैं। यथा - ॥1॥ देवदत्त की इच्छा

1- दे0 आचार्य नरेन्द्रदेव, बौद्ध - धर्म दर्शन - ॥पृ0 9॥
2- विशेष के लिए देखिए - काशीप्रसाद जायसवाल - हिन्दू राजतंत्र - भाग 1-2
3- बौद्ध - धर्म - दर्शन - ॥पृ0 5॥

7

भिक्षु संघ का नेता बनने की थी, किन्तु बुद्ध ने देवदत्त की प्रार्थना को अस्वीकार किया, तब देवदत्त ने स्वयं भगवान बुद्ध को मारने के लिए अनुचर भेजे थे।[1]

§2§ भगवान बुद्ध जिस समय कौशाम्बी के घोषितारान में विहार कर रहे थे तब एक भिक्षु ने उन्हें यह सूचना दी - "यहाँ कौशाम्बी में भन्ते ! भिक्षु भण्डन करते, कलह करते, विवाद करते एक दूसरे को मुख-शक्ति से बेधते फिरते हैं।"[2]

§3§ जब बुद्ध भगवान का महापरिनिर्वाण हुआ तो कुछ भिक्षुओं ने मुक्ति प्राप्ति का सा अनुभव किया। उदाहरण के लिए सुभद्र नामक भिक्षु ने रोते हुए भिक्षुओं से कहा - "मत आवुसो ! मत शोक करो, मत रोओ। हम सुमुक्त हो गये। उस महाश्रमण से पीड़ित रहा करते थे - यह तुम्हें विहित है, यह तुम्हें विहित नहीं है। अब हम जो चाहेंगे, सो करेंगे, जो नहीं चाहेंगे, सो नहीं करेंगे।"[3]

सुभद्र के उपर्युक्त वक्तव्य को सुनकर महाकाश्यप ने यह अनुभव किया था कि अधर्म और अविनय प्रकट हो रहा है। उपर्युक्त तथ्यों से प्रकट होता है कि भिक्षु-चर्या सम्बन्धी कतिपय नीति-नियमों को लेकर भिक्षुओं में मतभेद था और उसके कारण उनमें कलह होता रहता था। किन्तु भगवान बुद्ध की उपस्थिति में, उनके असाधारण व्यक्तित्व के प्रभाव के फलस्वरूप, प्रकट रूप से कोई ऐसी बातें कहने का साहस नहीं कर पाता था। अथवा उनके द्वारा समझाये जाने पर लोग शान्त हो जाते थे। किन्तु यह सब भिक्षुओं में व्याप्त उस असन्तोष का तात्कालिक उपचार ही था, जो बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद संघ-भेद के रूप में प्रकट हुआ।

1- डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास - §पृ० 168§

2- म०म० राहुल सांकृत्यायन - बुद्धचर्या - §पृ० 92§

3- म०म० राहुल सांकृत्यायन - बुद्धचर्या - §पृ० 507§

महाकाश्यप ने धर्म (बुद्धोपदिष्ठ मार्ग) में अधर्म और अविनय के प्रवेश की जो आशंका व्यक्त की थी, उसके निवारण के लिए उन्होंने संगीति का आयोजन आवश्यक समझा, और उनके आदेश पर बुद्ध के परिनिर्वाण के कुछ ही दिन पश्चात् जो संगीति बुलाई गयी, वही आगे चलकर प्रथम संगीति के नाम से प्रसिद्ध हुई जिसका संक्षिप्त परिचय आगे दिया जा रहा है।

8। प्रथम संगीति :-

बुद्ध के निर्वाण पर प्रथम धर्म संगीति (धर्म - सभा) राजगृह में हुई, जिसमें धर्म और विनय का संग्रह (संगायन) हुआ।[1] महाकाश्यप इस संगीति के प्रधान थे। आयुष्मान महाकाश्यप ने एक कम पाँच सौ अर्हत् चुने।[2] आनन्द के भी (अर्हत) हो जाने पर उन्हें भी धर्म और विनय से उनके बहुत परिचित होने के कारण चुन लिया गया।[3] इस प्रकार प्रथम संगीति में सदस्यों की संख्या पाँच सौ हो गयी. ये सभी अर्हत थे।

इस संगीति में मुख्य रूप से जो कार्य सम्पन्न हुआ - वह था - विनय और सुत्त-पिटक का संगायन करके उनका पाठ शुद्ध करना। उल्लेख्य होगा कि भिक्षुओं के असन्तोष और पारस्परिक मतभेदों को मिटाने के जिस उद्देश्य से यह संगीति बुलाई गयी थी उसका कोई स्थायी समाधान इसमें नहीं हो पाया। इसके विपरीत संघ के विभाजन को निश्चित करने वाली भूमिका तैयार हो गई।

प्रथम संगीति ही बौद्ध धर्म के इतिहास में एक मात्र संगीति नहीं है। इसके बाद भी अनेक संगीतियों का आयोजन किया गया। इन परवर्ती संगीतियों की सापेक्षता से ही इसे प्रथम संगीति कहा गया है। वस्तुस्थिति यह है कि यहाँ से आगे का बौद्ध - धर्म का इतिहास एक के बाद एक संगीतियों के आयोजन, विविध बौद्ध-यानों के उदय - अस्त, अनेक साम्प्रदायिक दार्शनिक मतों के प्रादुर्भाव और

1- आचार्य नरेन्द्रदेव, बौद्ध - धर्म - दर्शन - (पृ0 27)

2- म0म0 राहुल सांकृत्यायन - बुद्धचर्या - (पृ0 511)

3- डॉ0 गोविन्दचन्द्र पाण्डेय - बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास - (पृ0 157)

विविध तांत्रिक भतों के उद्भव के रूप में है । यहाँ इसी रूप में बौद्ध-धर्म की ऐतिहासिक रूपरेखा प्रस्तुत करना अभिप्रेत है । अतः सर्वप्रथम परवर्ती संगीतियों का विवरण आगे दिया जा रहा है ।

9। द्वितीय संगीति :-

प्रथम संगीति के एक सौ साल बाद ही ।वि0 पू0 383। "विनय-पिटक" के कठोर नियमों को लेकर कुछ भिक्षुओं ने विद्रोह करना प्रारम्भ कर दिया । वैशाली के इन भिक्षुओं ने विनय के कुछ नियमों की अवहेलना प्रारम्भ कर दी। अन्त में विनय के इन विवादास्पद विषयों पर चर्चा के लिए वैशाली में भिक्षु-संघ एकत्रित हुआ । यह सम्मेलन "द्वितीय - संगीति" के नाम से प्रसिद्ध है । किन्तु कितने ही भिक्षु इस संगीति से सहमत नहीं हुए, और उन्होंने अपने महासंघ का कौशाम्बी में पृथक् सम्मेलन किया व अपने अनुसार धर्म और विनय का संग्रह किया ।[1] वैशाली की इस द्वितीय संगीति के परिणामस्वरूप महा-संघिकों का एक प्रभावशाली सम्प्रदाय स्थापित हो गया, जो स्थविरवादियों का कट्टर विरोधी था ।[2] संघ के जिन भिक्षुओं ने विनय के प्राचीन रूप को ही स्वीकार किया, वह वृद्ध भिक्षुओं का पुरानी परम्परा पर चलनेवाला संघ "स्थविरवादी" नाम से प्रसिद्ध हुआ और दूसरा "महासांघिक" नाम से ।अर्थात् यह संगीति भी जिन मतभेदों को दूर करने के लिए बुलाई गयी थी, उनका कोई सर्व-मान्य हल नहीं निकला । इतना ही नहीं इस संगीति से फलित उक्त दो प्रमुख समुदायों ।स्थविरवादी एवं महासांघिक। में से, आने वाले तथा सौ वर्षों में, 18 निकायों का जन्म हुआ । जो इस प्रकार है - "स्थविरवादी से - वज्जिपुत्रक, महीशासक, धर्मगुप्तिक, सौत्रान्तिक, सर्वास्तिवाद, काश्यपीय, संक्रान्तिक, सम्मितीय, छाण्णागरिक, भद्रयानिक, धर्मोत्तरीय और महासांघिकों से - गोकुलिक, एकव्यवहारिक, प्रज्ञप्तिवाद ।=लोकोत्तरवादी।, बहुलिक तथा चैत्यवादी ।"[3]

1- म0म0 राहुल सांकृत्यायन, बुद्धचर्या - ।पृ0 6।

2- डॉ0 भरतसिंह उपाध्याय, बौद्धदर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन - ।पृ0 313।

3- दे0 म0म0 राहुल सांकृत्यायन - ।पृ0 6।

इन निकायों में से कोई-कोई निकाय बुद्ध को मनुष्य न मानकर लोकोत्तर मानने लगा। किसी ने बुद्ध के अनेक जन्म मानते हुए उनके भीतर अलौकिक एवं दिव्य शक्तियों का होना स्वीकार किया, तो कुछ निकायों ने बुद्ध भगवान के जन्म व निर्वाण को ही संदिग्ध घोषित कर दिया। इन विविध विचारों के कारण उनके विनय व सूत्र में भी अन्तर आता गया और मतभेदों के बढ़ने के कारण आगे चलकर तृतीय संगीति का आयोजन करना आवश्यक हो गया।

10) तृतीय संगीति :-

भगवान बुद्ध के निर्वाण के लगभग सवा दो सौ वर्ष बाद अशोक ने बौद्ध-धर्म स्वीकार किया। अशोक के गुरु मोग्गलिपुत्र तिस्स (मौद्गलिपुत्र तिष्य) ने बहु संख्यक भिक्षु संघ में से एक सहस्त्र बुद्धिमान, षड्भिज्ञ, त्रिपिटक विद और प्रतिसम्भिदा प्राप्त भिक्षुवों को सद्धर्म संग्रह के लिए चुना।[1] इन्होंने संघ के आपसी मतभेदों को दूर करने के लिए पटना में अशोक के बनवाये "अशोकाराम विहार" में इस संगीति का आयोजन किया।[2] इसमें सभी विवादास्पद विषयों पर चर्चा हुई तथा अभिधम्म पिटक की रूप-रेखा निश्चित की गई। इस संगीति के आयोजन का प्रमुख लक्ष्य बौद्ध धर्म की नवोद्भूत विविध शाखाओं प्रशाखाओं में सामन्जस्य स्थापित करना था।[3] किन्तु तात्विक दृष्टि से इस संगीति का परिणाम भी बौद्ध-संघ के एक नये विभाजन के रूप में ही हुआ। क्योंकि मौद्गलिपुत्र तिष्य ने सद्धर्म एवं संघ की शुद्धि के लिए चलाये गये अभियान में हजारों की संख्या में जिन भिक्षुओं को संघ से निष्कासित किया उन्होंने काश्मीर एवं गांधार जैसे दूरस्थ क्षेत्रों में जाकर अपने नये संघ गठित किए।

1- डॉ0 गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास - (पृ0 199)

2- म0म0 राहुल सांकृत्यायन, बुद्धचर्या - (पृ0 6)

3- डॉ0 सरला त्रिगुणायक, मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव - (पृ0 59)

इस संगीति के उपरान्त अशोक ने बौद्ध-धर्म के प्रचार-प्रसार का व्यापक कार्य किया । भारत से पहली बार यह धर्म दुनिया के बाहरी देशों - चीन, जापान, लंका, बर्मा, सीरिया आदि में फैला । इसी समय से बौद्ध-धर्म विश्व-धर्म की पदवी पाने के लिए अग्रसर हुआ ।[1]

III चतुर्थ संगीति :-

यह चौथी संगीति बौद्ध धर्म के इतिहास में कुषाण-वंश के सम्राट कनिष्क के समय ईसा की प्रथम शताब्दी में काश्मीर में सम्पन्न हुई थी । उस समय गान्धार के सर्वास्तिवाद में - जो मूल सर्वास्तिवाद कहा जाता था - काश्मीर और गान्धार के आचार्यों का मतभेद हो गया था ।[2] कनिष्क की सहायता से अश्वघोष व वसुमित्र की अध्यक्षता में सर्वास्तिवादियों की एक सभा बुलाई गयी । बड़े परिश्रम से इन स्थविरवादी भिक्षुवों ने बौद्ध-धर्म के विशिष्ट सिद्धान्तों पर अपने विचार निश्चित किए, विरोधों का परिहार किया तथा अपने त्रिपिटकों पर "विभाषा" नामक टिकाएँ लिखी । विभाषा के अनुयायी होने से मूल सर्वास्तिवादी "वैभाषिक" कहलाए ।[3]

बौद्ध साहित्य में उक्त संगीतियों के आयोजन से सम्बन्धित जो विस्तृत विवरण उपलब्ध होते हैं, उनके अध्ययन से प्रकट होता है कि ये संगीतियाँ कहने के लिए तो भिक्षुओं के अलग-अलग गुटों की विनय-विषयक मान्यताओं के मतभेदों को समाप्त करने अथवा भिक्षु संघ की गुट-बंधी को समाप्त करने के उद्देश्य से बुलाई गईं थीं, किन्तु सच्चाई यह झलकती है कि इनमें भाग लेने वाले गुटों में से प्रत्येक बौद्ध-संघ पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की भरसक चेष्टा करता था । इस स्पर्धा में अधिकांश तौर पर विजय उस गुट की होती थी, जो इसका आयोजक होता था । इतना ही नहीं, अजात शत्रु और अशोक

1- आचार्य बलदेव उपाध्याय, बौद्ध दर्शन मीमांसा - पृ० 40

2- म०म० राहुल सांकृत्यायन, बुद्धचर्या - पृ० 8

3- म०म० राहुल सांकृत्यायन, बुद्धचर्या - पृ० 8

की तरह कतिपय अन्य राजाओं ने भी संघ पर अपना प्रभुत्व जमाने की भरपूर चेष्टा की थी । अतः ये संगीतियाँ अधिकतर संघ पर अपना-अपना प्रभुत्व जमाने के राजनीतिक उद्देश्यों से प्रेरित होकर आयोजित की गईं । सम्भवतः यही कारण है कि प्रायः प्रत्येक संगीति का परिणाम बौद्ध-संघ के प्रत्यक्ष या परोक्ष, एक नये विभाजन में हुआ । अर्थात् प्रत्येक संगीति का परिणाम स्थायी संघ-भेद में हुआ ।

कुल मिलाकर यह कह सकते हैं कि विनय सम्बन्धी मतभेद, बौद्ध-संघ पर क्षेत्रीय अधिपत्य की स्थापना, राजकीय प्रभुत्व की स्थापना और दार्शनिक चिन्तन विषयक मतभेदों आदि कारणों से बौद्ध-संघ के आड़े-ठाड़े अनेकविध विभाग अस्तित्व में आये । इनमें से अनेक विभाग ॥या भेद॥ अल्पजीवी सिद्ध हुए । जिन्होंने अपना कोई इतिहास छोड़ा है, उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है ।

॥2॥ **बौद्ध-धर्म के तीन यान :-**

बौद्ध-धर्म के इतिहास को समझने में दूसरा उपकारक तत्व है - बौद्धों की यान परम्परा । बौद्ध-साहित्य में तीन यानों का उल्लेख मिलता है -

1॥ श्रावकयान ॥हीनयान॥

2॥ प्रत्येक बुद्धयान और

3॥ बोधिसत्वयान ॥महायान॥

1॥ **श्रावकयान :** इसका अनुयायी सफल साधक स्वयं दुःख विमुक्त होकर "अर्हत्" हो जाता है । इसे श्रावक ॥शिष्य॥ यान इसलिए कहा गया, क्योंकि इसका साधक आजीवन शिष्य ही रहता है । स्वयं किसी को दीक्षा नहीं दे सकता । अर्थात् - वह किसी का गुरु नहीं बन सकता । जैसा ऊपर कहा गया है, इनकी साधना का अन्तिम लक्ष्य अर्हत् पद प्राप्ति होता है, जिसे हम चाहें तो वेदान्तियों की भाषा में जीवन-मुक्ति पद कह सकते हैं ।

3

यह मुख्य रूप से उन भिक्षुओं का संगठन था, जो बुद्ध भगवान के जीवन-काल से चले आ रहे बौद्ध-धर्म के परम्परागत सिद्धान्तों के कट्टर पक्षपाती थे । जो किसी भी प्रकार के परिवर्तन को अस्वीकार करते हुए परम्परागत सिद्धान्तों का निर्वाह करते रहे । इसको हीनयान के नाम से भी जाना जाता है । हीनयानियों को यह नाम उनके प्रति-द्वन्द्वी महायानियों ने दिया था । क्योंकि स्वयं को उन्होंने महायानी माना, अतः अपने प्रतिपक्षियों को हीनयानी संज्ञा दी । हीनयानी वे बौद्ध-भिक्षु हैं, जो त्रिपिटकों में प्रतिपादित प्राचीन बुद्ध-धर्म के अनुयायी हैं । जिनका एक अन्य नाम "स्थविरवादी" हैं, जो परम्परा से चला आ रहा है । इसके अलावा इन्हें "थेरवादी भी कहा गया है ।

2) **प्रत्येक बुद्धयान :** प्रत्येक बुद्धयान का साधक बिना किसी गुरु के बुद्धत्व प्राप्त करता है, किन्तु स्वयं बुद्ध या गुरु बनने का अधिकारी नहीं होता । अतः वह हीनयानी साधक (जो सदैव श्रावक रहता है) से उत्तम कोटि का होता है, किन्तु महायानी साधक (बोधिसत्वयानी) से निम्न कोटि का होता है ।

3) **बोधिसत्वयान :** बोधिसत्वयान ही महायान के नाम से जाना जाता है । भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् स्थविर-वाद तो अपनी पुरानी बातों को सुरक्षित रखे रहा, किन्तु दूसरे निकायों ने अपने आचारों में शिथिलता प्रारम्भ कर दी । अब उन्हें विनय-पिटक के कठोर नियमों में लचीलेपन की आवश्यकता अनुभव हुई । महायान सम्प्रदाय मूल बौद्ध-धर्म का वह विकसित रूप है, जिसने संन्यास मार्ग प्रधान हीनयान की अपेक्षा स्वयं को काफी उदार बनाया । महायान का जन्म भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के लगभग 400 वर्ष बाद महासांघिकों की

आंध्रप्रदेशीय शाखाओं से हुआ ।[1] महायानियों की अपनी मान्यता है कि बुद्ध-भगवान ने गृधकूट पर्वत पर दूसरी बार धर्मचक्र प्रवर्तन किया था । यह द्वितीय धर्मचक्र प्रवर्तन महायानियों के लिए था ।[2]

महायानी साधक स्वयं बुद्धत्व प्राप्त करके गुरुपद पर अभिषिक्त होता है । अर्थात् जो दूसरों को धर्म का उपदेश करने का, और इस प्रकार एकनये सम्प्रदाय का प्रवर्तक बनने का अधिकारी होता है और इस प्रकार वह स्वयं ही भगवान बुद्ध बन जाता है । जो असंख्य जीवों का मार्गदर्शक (गुरु, धर्मो-पदेशक) बनने के लिए अपनी मुक्ति की चिन्ता न कर, दूसरों के उद्धार का प्रयत्न करता है, और सब के बाद उस मार्ग से स्वयं निर्वाण को प्राप्त होता है । यही बोधिसत्वयान (बुद्धयान, महायान आदि) भी कहा जाता है ।

महायान की प्रमुख विशेषताएं : इस यान की प्रमुख विशेषता इस प्रकार हैं -

1- गौतम बुद्ध को ईश्वरत्व प्रदान करना, व उनके अवतारी स्वरूप की कल्पना करना । मूर्ति पूजा, अर्चना आदि को मान्यता देना ।

2- "बुद्ध की त्रिकाय" सिद्धान्त को मान्यता देना ।

3- तन्त्र-मन्त्र व गुह्य साधनाएं प्रमुख रूप में स्वीकारना एवं बुद्ध के साथ अनेक देवी-देवताओं की कल्पना कर लेना ।

4- बुद्ध के मौन की दार्शनिक व्याख्याएं प्रारम्भ करना ।

5- गुरु की श्रेष्ठता का प्रतिपादन ।

6- महायानी के जीवन का परम लक्ष्य बुद्धत्व-प्राप्ति स्वीकारना ।

7- बौद्ध-धर्म की मूल साहित्यिक भाषा पाली के साथ-साथ संस्कृत का भी प्रयोग प्रारम्भ कर देना ।

1- दे0 डॉ0 भरतसिंह उपाध्याय, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन - (पृ0 556)

2- दे0 डॉ0 गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास - (पृ0 303)

उपर्युक्त प्रमुख विशेषताएँ महायान को मूल बौद्ध-धर्म अर्थात् हीनयान से भिन्न एवं विशिष्ट बनाती हैं ।

आगे चलकर ऊपर वर्णित तीन यानों में से मूल रूप से दो यानों, अर्थात् श्रावकयान (हीनयान) व बोधिसत्वयान (महायान) का विकास हुआ । प्रत्येक बुद्धयान के विकास का कोई ऐतिहासिक उल्लेख प्राप्त नहीं होता ।

सामान्य मान्यता है कि भगवान बुद्ध लोक-परलोक एवं आध्यात्म विषयक प्रश्नों को अव्याकृत बताकर उनका उत्तर नहीं देते थे । किन्तु कालान्तर में उनकी परम्परा में अनेक दार्शनिक मत अस्तित्व में आये जिनमें चार प्रमुख हैं । जिनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है :-

(3) <u>दार्शनिक सम्प्रदाय</u> :-

चौथी शताब्दी तक आते-आते बौद्ध-धर्म अनेक निकायों के फलस्वरूप चार दार्शनिक सम्प्रदायों में विभक्त हो गया - जिनका संक्षिप्त रूप से आगे परिचय दिया जा रहा है -

1) वैभाषिक : यह प्राचीन मत है किन्तु पहले इसका नाम सर्वास्तिवाद था । इसे वैभाषिक नाम विक्रम की पहली शताब्दी के अनन्तर प्राप्त हुआ । इन लोगों ने चतुर्थ संगीति के समय त्रिपिटकों पर "विभाषा" नामक टीकाएँ लिखी और वैभाषिक कहलाये । इस मत के प्रमुख आचार्यों में वसुमित्र व अश्वघोष के नाम आते हैं । कनिष्क ने इस मत का प्रचार विदेशों में भी करवाया । इस मत का प्रधान प्रचारक इन्हें ही माना जाता है ।[1] ज्ञानप्रस्थान, महाविभाषा आदि इस मत के प्रमुख ग्रंथ हैं ।

2) सौत्रान्तिक : सौत्रान्तिक मत सर्वास्तिवादियों की दूसरी शाखा थी । ये लोग सूत्र (सूत्रान्त) को ही बुद्ध मत की समीक्षा के लिए

1- विस्तार के लिए देखिए : आचार्य बलदेव उपाध्याय, बौद्ध दर्शन मीमांसा - (पृ० 165)

प्रमाणिक मान कर चले । इसलिए यह मत सौत्रान्तिक नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस मत के प्रतिष्ठापक का नाम आचार्य कुमारलात था । इनके अलावा श्रीलाभ, धर्मत्रात, बुद्धदेव, यशोमित्र आदि इस मत के आचार्य माने जाते हैं। आचार्य कुमारलात कृत "कल्पनामण्डितिका" इस मत का प्रामाणिक ग्रंथ है ।

3॥ **योगाचार या विज्ञानवाद :** विज्ञान ॥चित्त, मन, बुद्धि॥ को एक मात्र सत्य मानने के कारण यह मत विज्ञानवाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ । आध्यात्मिक सिद्धान्त के कारण यह विज्ञानवाद कहलाया तथा धार्मिक तथा व्यवहारिक दृष्टि से इसका नाम योगाचार भी है ।[1] इस मत के संस्थापकों में प्रमुख रूप से आचार्य मैत्रेय - नाथ व उनके शिष्य आचार्य असंग का नाम आता है । इनके अलावा आचार्य स्थिरमति, आचार्य धर्मपाल, आचार्य धर्मकीर्ति आदि इस मत के प्रसिद्ध आचार्य माने जाते हैं । महायान - सूत्रालंकार, अभिसमयालंकारिका, महायान सम्परिग्रह आदि इस मत के प्रामाणिक ग्रंथ है ।

4॥ **माध्यमिक मत या शून्यवाद :** आचार्य नागार्जुन द्वारा प्रतिष्ठित इस मत में बुद्ध के प्रतीत्य समुत्पाद के सिद्धान्त को विकसित कर शून्यवाद की प्रतिष्ठा की गई है । बुद्ध के द्वारा प्रतिष्ठित मध्यममार्ग के दृढ़ पक्षपाती होने के कारण यह माध्यमिक संज्ञा से भी जाना जाता है । नागार्जुन की कृति "माध्यत्मिककारिका" इसका प्रसिद्ध ग्रंथ है । आचार्य शान्तिदेव, आर्यदेव, चन्द्रकीर्ति आदि इस मत के अन्य आचार्य हुए ।

आचार्य बलदेव के अनुसार उपर्युक्त चारों दार्शनिक मतों में से वैभाषिक का सम्बन्ध हीनयान से तथा शेष तीन मतों का सम्बन्ध महायान से है ।[2]

1- आचार्य बलदेव उपाध्याय, बौद्ध दर्शन मीमांसा - ॥पृ0 225॥

2- आचार्य बलदेव उपाध्याय, बौद्ध दर्शन मीमांसा - ॥पृ0 161॥

कालान्तर में महायान के अन्तर्गत तान्त्रिक साधना मार्ग स्वीकृत हुआ । नीचे उसका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है :-

§4§ तान्त्रिकयान :-

महायान की प्रमुख दो शाखाएँ थीं - §1§ पारमितानय और §2§ मंत्रनय । सामान्य मान्यतानुसार मंत्रनय ही तांत्रिकनय था, किन्तु म0म0 गोपीनाथ कविराज का विचार है कि पारमितानय भी एक प्रकार से तांत्रिकनय ही था । जो हो, इतना निर्विवाद है कि बौद्ध तांत्रिक यानों का विकास मन्त्रनय से हुआ । महायान से विकसित हुए तांत्रिक यानों में चार मुख्य हैं - §1§ मंत्रयान, §2§ वज्रयान, §3§ सहजयान और §4§ कालचक्रयान ।

1§ मंत्रयान §400 ई0 से 700 ई0 तक§ : बौद्ध-वाङ्मय के अनुसार भगवान बुद्ध ने धान्यकटक पर तीसरी बार धर्मचक्र प्रवर्त्तन किया जो ... मंत्रयान के लिए था ।[1] महायानी मंत्रनय का तांत्रिक स्वरूप ही मंत्रयान है । जिसमें मंत्रों का बाहुल्य था । बुद्ध-वचनों को पाठ की सुविधा के लिए छोटे-छोटे सूत्रों में रचा गया । इन्हीं सूत्रों का संक्षिप्त रूप मंत्र कहलाता था । ये मंत्र प्रायः अर्थहीन होते थे । इनमें कम से कम शब्दों का प्रयोग होता था । जैसा कि म0म0 राहुलजी ने लिखा है - "अब मंत्र भी धारणी के रूप में बनने लगे और इस प्रकार के मंत्रों का सृजन होने लगा - "ओं तारे तुत्तारे तुरे स्वाहा । ओं मुने-मुने महामुने स्वाहा । ओं आ हुँ ।"[2] इस प्रकार मन्त्रयान के माध्यम से बौद्ध-धर्म तांत्रिक प्रवृत्तियों की ओर मुड़ा । यहीं से अवलोकितेश्वर, मंजुश्री आदि बोधिसत्वों के नाम से भैरवीचक्र, स्त्री सम्भोग आदि का भी बौद्ध

1- दे0 डॉ0 गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, बौद्ध-धर्म के विकास का इतिहास - §पृ0 303§

2- पुरातत्वनिबन्धावली - §पृ0 137§

धर्म में प्रवेश हुआ ।[1] आठवीं शताब्दी तक आते-आते बौद्ध विचार अपनी मौलिकता खो बैठता है वह मंत्रों, धारणियों और योगिनियों का शिकार हो जाता है । तांत्रिकता का उसमें अदम्य समावेश हो जाता है ।[2]

2। वज्रयान ।800 ई0 से 1200 ई0 तक। : मंत्रयान का विकसित स्वरूप कालान्तर में वज्रयान के रूप में सामने आया । म0म0 राहुलजी ने इसका काल विभाजन इस प्रकार किया है - मंत्रयान ।नरम। ई0 400 से 700 ई0 तक और वज्रयान ।गरम। ई0 800 से 1200 तक[3] । इसमें 84 ।चौरासी। सिद्धों की गणना की जाती है । इस सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्यों में - अनंगवज्र, पद्मवज्र, इन्द्रभूति, लीलावज्र, लक्ष्मीकरा, डोम्बी, हेरूक, सरहपा, शबरपा, लूइपा, दारिकापा आदि के नाम प्रसिद्ध हैं, जिनकी चर्चा हम आगे चलकर करेंगे ।

म0म0 राहुलजी के अनुसार "तिब्बतीय ग्रन्थों में लिखा है कि वज्रयान का धर्मचक्र - प्रवर्त्तन बुद्ध ने श्रीधान्यकटक में किया था । इससे वज्रयान की उत्पत्ति भी आंध्रप्रदेश में हुई सिद्ध होती है ।[4] गुह्य समाजतन्त्र या तथागत गुह्यक अद्वयवज्र संग्रह, तत्त्व-रत्नावली, प्रज्ञोपायविनिश्चय सिद्धि, साधनमाला तथा ज्ञानसिद्धि आदि इस सम्प्रदाय के प्रमुख ग्रंथ हैं ।

3। सहजयान : आगे चलकर "वज्रयान" ही सहजयान में रूपान्तरित हुआ । अन्य अधिकारी विद्वानों में से म0म0 राहुल सांकृत्यायन[5], आचार्य बलदेव उपाध्याय[6], डॉ0 विश्वम्भरनाथ उपाध्याय[7], श्री परशुराम चतुर्वेदी[8]

1- डॉ0 भरतसिंह उपाध्याय, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन - ।पृ0 563।
2- डॉ0 भरतसिंह उपाध्याय, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन - ।पृ0 564।
3- दे0 पुरातत्वनिबन्धावली - ।पृ0 137।
4- पुरातत्वनिबन्धावली - ।पृ0 116।
5- बुद्धचर्या - ।पृ0 10।
6- बौद्ध दर्शन मीमांसा - ।पृ0 368।
7- हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठ भूमि - ।पृ0 255।
8- उत्तरी भारत की संत परम्परा ।पृ0 41।

प्रभूति ने भी अपनी-अपनी कृतियों में इस तथ्य को स्वीकार किया है । वज्रयानियों ने "वज्र" को जो महत्व प्रदान किया था वही महत्व सहजयानियों ने "सहज" को दिया है ।

वज्रयानी आचार्य और साहित्य सहजयानियों में भी मान्य है । जैसा कि डॉ० रामनाथ शर्मा ने लिखा है - "विशेष बात यह है कि इनका अपना कोई प्रामाणिक साहित्य नहीं है । वज्रयानी साहित्य का प्रमाण यहाँ पर भी मान्य है । इनके चर्यापदों एवं दोहाओं में मुख्यत: इनकी साधनात्मक अनुभूतियों की ही अभिव्यक्ति पायी जाती है । इनकी सैद्धान्तिक अवधार-णाओं को वज्रयानी साहित्य के आधार पर ही समझना होता है ।"[1]

4) कालचक्रयान : सहजयान के बाद बौद्ध तांत्रिक सम्प्रदाय के अन्तर्गत "कालचक्रयान" का नाम आता है । यह बौद्ध तांत्रिकों का अन्तिम सम्प्रदाय माना गया । इस यान के प्राप्य साहित्य में "नरोपा" या (नड़पाद 10 वीं शताब्दी) कृत "सैकोद्देश्यटीका" को इसका प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है । इस यान में परम तत्त्व को, अथवा परम सत्ता को ही "कालचक्र" कहा गया है । जिसे कहीं ये आदिब्रह्म अथवा आदिबुद्ध के नाम से अभिहित करते हैं ।

कालचक्र के विशेष ग्रन्थ हैं - श्रीकालचक्र मूल मंत्र, परमार्थ सेवा, विमलप्रभा आदि ।

(5) <u>बौद्धसिद्ध</u> :-

बौद्ध-तांत्रिकयान के अन्तर्गत 84 सिद्धों की गणना की जाती है । बौद्ध धर्म अन्तिम दिनों में तंत्र-मंत्र की साधना में बदल गया था, ये सिद्ध उसी के

1- श्रेय-साधक कबीर - (पृ० 122)

|o

उपासक थे ।[1] सिद्धों का समय सं0 817 से माना जाता है, क्योंकि सिद्धों के प्रथम कवि "सरहपा" का आविर्भाव काल सं0 817 वि0 है ।[2] वैसे इन चौरासी सिद्धों की परम्परा किसी एक शताब्दी की न होकर नवीं से लेकर बारहवीं ।12वीं। शताब्दी के मध्यकाल तक के सिद्धाचार्यों तक विस्तृत है ।[3]

भारत के पूर्वी प्रदेशों, विशेषकर उड़ीसा, बिहार व असम में इनका व्यापक प्रभाव था । ये सिद्ध "जाति-प्रथा" के विरोधी थे । स्वयं वज्रयानी साधक नीची जाति के थे, अतः जाति-प्रथा के प्रति उनका असन्तोष स्वाभाविक था ।[4] ये प्रायः सभी कामाचारी थे ।[5] इन सिद्धों में से कुछ प्रमुख सिद्धों के नाम इस प्रकार हैं - सरहपा, शबरपा, लूइपा, पद्मवज्र, दारिकापाद, सहजयोगिनी चिन्ता, इन्द्रभूति, लक्ष्मीकरा, लीलावज्र, जालन्धरपा, अनंगवज्र, डोम्बी हेरुक आदि ।

इन 84 सिद्धों में से अधिकांश का सम्बन्ध पूर्वी प्रदेशों से था, जिनमें से कुछ का नाम व प्रदेशों का परिचय इस प्रकार है -

1-	मगध	लूइपा, लीलापा, विरूपा, चौरंगिपा, शांतिपा, खड्गपा, नारोपा आदि ।
2-	कामरूप	मीनपा, राहुलपा ।
3-	नालन्दा	सरहपा ।
4-	विष्णुनगर	चमारिपा ।
5-	गौड़ ।बिहार।	चर्पटी ।
6-	चम्पा	चर्पटी ।
7-	सम्भलनगर।बिहार।	लक्ष्मीकरा ।

1- आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य - ।पृ0 37।
2- डॉ0 रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - ।पृ0 57।
3- आचार्य बलदेव उपाध्याय, बौद्ध-दर्शन-मीमांसा - ।पृ0 367।
4- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास ।पृ0 13।
5- दे0 म0म0 राहुल सांकृत्यायन, बुद्धचर्या ।भूमिका। ।पृ0 14।

8-	उडन्तपुरी [पूर्वी प्रदेश]	जोगीपा ।
9-	पूर्वी भारत	थनगपा ।
10-	भंगलपुर	चेलुकपा ।
11-	उड़ीसा	दारिकपा । इत्यादि ।[1]

16] उत्तर मध्यकाल में बौद्ध धर्म की स्थिति पर पुनर्विचार :-

पूर्वकथन : बौद्ध-सिद्धों तक तो बौद्ध-धर्म का पारम्परिक इतिहास मिलता है, किन्तु सिद्धों से आगे इसके किसीयान अथवा परम्परा का ऐसा निरापद और ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख नहीं मिलता, जिसको इसका क्रमिक-विकास कहा जा सके । अतः इतिहासकारों में सामान्य मान्यता यह चली आ रही थी कि आचार्य शंकर, कुमारिल भट्ट एवं उदयनाचार्य आदि वेदान्तियों और मीमांसकों के प्रयत्नों से बौद्ध-धर्म इस देश से निष्कासित हो गया । इस अति प्रचलित मान्यता के कारण मध्यकालीन कृष्णभक्ति पर किसी वैष्णवेत्तर सम्प्रदाय का प्रभाव देखना अप्रासंगिक अथवा अनैतिहासिक हो गया। किन्तु गवेषी विद्वानों के शोधकार्यों से शंकराचार्य प्रभृति द्वारा बौद्ध धर्म के भारत से निष्कासन की बात असिद्ध होती जा रही है । महामहिम हरप्रसाद शास्त्री का कहना है - "ये इतिहासकार जो भी हों, स्पष्टतः अपने मत का खण्डन करते थे कि शंकराचार्य ने बौद्ध धर्म को भारत के भू-भाग से भगा दिया, तो वे यह भी कहते थे कि वे पाल-वंश के पतन के बाद सफल हुए थे ।"[2]

एक बार यह स्थापित होने पर कि बौद्ध-धर्म शंकराचार्य प्रभृति के प्रयत्नों से इस देश से निष्कासित नहीं हुआ, उसकी सिद्ध-परवर्ती परम्परा के अस्तित्व को खोज निकालना या उस पर पुनर्विचार करना प्रासंगिक हो जाता है ।

1- विस्तार के लिए देखिए - म0म0 राहुल सांकृत्यायन, पुरातत्वनिबन्धावली [पृ0 148 - 154]

2- श्री नगेन्द्रनाथ वसु, भक्तिमार्गी बौद्ध-धर्म [म0म0 हरप्रसाद शास्त्री द्वारा लिखित भूमिका से साभार] [पृ0 4]

हमारे पूर्ववर्ती विवरण से प्रकट है कि भारत में प्रारम्भ से ही बौद्ध-धर्म के दो प्रमुख क्षेत्र थे - ﴾क﴿ दक्षिणी भारत तथा ﴾ख﴿ पूर्वी भारत । अतः यहाँ हम इन दोनों में मध्यकाल तक बौद्ध धर्म की स्थिति के विषय में अलग - अलग विचार करते हैं ।

क﴿ दक्षिण भारत :

महायानी बौद्ध धर्म का पहला प्रमुख क्षेत्र दक्षिण भारत था । महायान बौद्ध-धर्म का जन्म अथवा द्वितीय धर्म-चक्र प्रवर्त्तन श्री शैल पर्वत ﴾आन्ध्र प्रदेश जिला गुन्टूर﴿ पर हुआ था । महायान के प्रथम आचार्य के रूप में नागार्जुन का नाम आता है, जो दक्षिण-भारत के आन्ध्र-प्रदेश में गुन्टूर पर्वत पर रहते थे । लामा तारानाथ ने भी अपने ग्रन्थ - "भारत में बौद्ध-धर्म का इतिहास", में लिखा है कि - "आचार्य नागार्जुन जीवन के अन्तिम दिनों में दक्षिण-भारत के श्रीपर्वत ﴾श्री शैलम﴿ पर रहते थे । जिन्हें कि महायान का प्रथम आचार्य कहा गया है । धान्यकटक तथा श्रीपर्वत चैतिय, पूर्व शैलीय व अपर शैलीय महासांघिकों का प्रधान केन्द्र रह चुका था । आचार्य नागार्जुन का इन स्थानों से सम्बन्ध इस बात की सूचना देता है कि महायान का उदय इन्हीं सम्प्रदायों से हुआ व महा-यान की जन्मभूमि दक्षिण भारत है ।"[1] डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय का भी मानना है कि - आन्ध्रप्रदेशीय महासांघिकों की पूर्व शैलीय एवं वैतुल्यक शाखाओं से ईसा पूर्व पहली शताब्दी में महायान का जन्म हुआ[2]। आन्ध्रपथ से महायान ने मगध ﴾पूर्वी भारत﴿ की यात्रा की ।[3] आन्ध्र के राजा तथा रानियाँ बौद्ध-धर्म पर विशेष अनुराग रखती थीं, और इसी

1- डॉ० भरतसिंह उपाध्याय, बौद्ध-दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन - ﴾पृ० 555﴿

2- बौद्ध-धर्म के विकास का इतिहास - ﴾पृ० 321﴿

3- बौद्ध-धर्म के विकास का इतिहास - ﴾पृ० 321﴿

कारण आंध्र प्रदेश अनेक शताब्दियों तक बौद्ध-धर्म का क्रीडा स्थल बना रहा है ।[1] आंध्र प्रदेश के महासांघिकों की एक शाखा का नाम "अन्धक" होना भी वहाँ इसके विशेष प्रभाव का सूचक है । आचार्य नागार्जुन के शिष्य नाग तथा आर्यदेव दक्षिण भारत के ही थे, और उन्होंने बौद्ध-धर्म के प्रचार-प्रसार में वहाँ बहुत योगदान दिया ।[2] दक्षिण भारत में महायानी बौद्ध-धर्म का प्रभाव किसी न किसी रूप में काफी बाद तक रहा । नवीं शती के मध्यकाल में कण्डपा §या कृष्णपाद§ एक प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु हुए थे, जो कि महाराजा देवपाल §809 - 849 ई0§ के समकालीन कर्नाटक देशीय भिक्षु थे ।[3] आलवाड़ भक्तों एवं तिरूवल्लुवर आदि दक्षिण भारत के जितने भी मध्यकालीन भक्त एवं संत हुए हैं उनके साहित्य में जातिभेद एवं वर्ण व्यवस्था का विरोध, भक्तों का निम्नवर्ण से सम्बन्ध, पुस्तक प्रामाण्य को अमान्य रखना, लोकभाषा में काव्य रचना, कर्मकाण्ड का विरोध, व्यक्तिवाद अथवा संन्यास आदि तथ्य प्रमुख रूप से थे । उपर्युक्त बातें उन पर बौद्ध प्रभाव की द्योतक हैं । अत: अपने किसी न किसी रूप में बौद्ध धर्म का अस्तित्व वहाँ होना ही चाहिए ।

हमारे विचार से मध्यकाल तक दक्षिणभारत में बौद्ध-परम्परा के अस्तित्व को निरापद रूप से सिद्ध करने में जो कठिनाई सामने आती है वह मुख्य रूप से इस कारण है कि बौद्ध मान्यताओं को औपनिषदिक् मान्यताओं के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा । विशेष रूप से शंकराचार्य से यह परम्परा प्रारम्भ हुई । शंकराचार्य स्वयं प्रच्छन्न बौद्ध कहे गये थे । उन पर नागार्जुन के शून्यवाद और विज्ञानवाद का प्रभाव प्राय: सभी ने स्वीकार किया है । इस प्रकार उनके बौद्ध होने में या बौद्ध-परम्परा से

1- आचार्य बलदेव उपाध्याय, बौद्ध-दर्शन-मीमांसा - §पृ0 199§

2- बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन - §पृ0 557§

3- दे0 डॉ0 राजबली पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का वृहत्त इतिहास, प्रथम भाग - §पृ0 341§

सम्बद्ध होने में सन्देह नहीं रहता । फिर भी, क्योंकि उन्होंने प्रस्थान त्रयी पर भाष्य लिखा है, या कहिए कि उपनिषदों को श्रुति, गीता को स्मृति और ब्रह्म सूत्रों को न्याय मान कर जो भाष्य लिखे हैं, उन्हें भ्रम से बौद्ध विरोधी मान लिया गया है । जबकि वे महायानियों की पारमितानय की परम्परा से सम्बद्ध हो सकते हैं और इसी प्रकार एक भ्रम का प्रचार हुआ जिसके फलस्वरूप बौद्ध परम्परा के भक्त एवं साधक वैदिक परम्परा के साधक के रूप में मान लिए गये, जो सर्वथा त्रुटिपूर्ण है। हमारा यह विचार आगे निरूपित धर्मान्तरण रूपान्तरण के विवरण से अधिक स्पष्ट हो जायेगा ।

ख॥ पूर्वी भारत:

हमारे पूर्ववर्ती विवरण से प्रकट है कि बौद्ध-सिद्धों में से अधिकांश का सम्बन्ध भारत के पूर्वी प्रदेशों से था । इन सिद्धों द्वारा रचित साहित्य जो "बौद्ध गान औ दोहा" तथा चर्यागीतों" के नाम से प्रसिद्ध है, को उसकी भाषा के आधार पर कुछ विद्वानों ॥म0म0 हरप्रसाद शास्त्री आदि॥ ने बंगाली भाषा में रचित माना है । यह तथ्य भी यही प्रकट करता है कि पूर्वी-प्रदेशों में बौद्ध-धर्म की स्थिति काफी समय तक थी । दूसरा तथ्य यह भी पूर्वी भारत में बौद्ध-धर्म के प्रभाव को दर्शाता है कि पाल राजाओं के समय में बौद्ध-धर्म राजाश्रय प्राप्त धर्म था । "आठवीं शताब्दी के परवर्ती भाग में पालवंश के धर्मपाल प्रथम गौड़ के राजसिंहासन पर अधिकार किए हुए था। वह बौद्ध था और अपने धर्म को अन्धविश्वास तथा पाखण्ड में डूबा हुआ देख उसे दु:ख होता था । उसने इसको अधोगति को रोकने का और धर्म की सभी गन्दगियों तथा अग्राह्य तत्वों को हटाकर विशुद्ध करने का संकल्प किया । उसकी आत्मा मानो उसके उत्तराधिकारियों के मन में समा गई थी और बौद्ध धर्म को उसके पूर्व उत्कर्ष एवं वैभव पर पुन: लाने के लिए परवर्ती राजमुकुटधारियों द्वारा व्यवस्थित तथा उत्साहपूर्ण यत्न किए गए ।"[1]

1- नगेन्द्रनाथ वसु, भक्ति मार्गी बौद्ध धर्म - ॥पृ0 35॥

सहजिया वैष्णवों की परम्परा, जो कि सहजयान का ही रूपान्तरण थी, के अन्तर्गत आने वाले भक्त कवियों (पंच सखा आदि) ने परोक्ष रूप में बुद्ध का ही गुणगान किया ।[1] जैसा कि हम आगे देखेंगे, जयदेव ने भी बुद्ध भगवान की अवतार के रूप में वन्दना की है ।[2]

पालवंश के पश्चात् सेनवंश, जो कि हिन्दू थे, के राज्यकाल में यद्यपि बौद्ध-धर्म का प्रभाव मन्द पड़ना प्रारम्भ हो चुका था, तथापि उड़ीसा 1560 ई0 तक बौद्ध धर्मावलम्बियों का गढ़ बना रहा । क्योंकि राजा रुद्रप्रताप की मृत्यु के 22 वर्ष बाद सन् 1551 ई0 में मुकुन्ददेव के सिंहासनारोहण पर महान परिवर्तनों के कारण उत्कल के राजनीतिक गगन में उथल-पुथल होने लगी । मुकुन्ददेव बौद्ध-धर्म का कट्टर समर्थक था ।[3]

इसके अतिरिक्त जैसा कि म0म0 राहुल सांकृत्यायन अपनी पुस्तक "बुद्ध-चर्या" में लिखते हैं - "गौड़ देश के राजा (तो) मुसलमानों की बिहार-बँगाल विजय तक बौद्ध-धर्म व कला के महान संरक्षक थे । गौड़-देश के पश्चिम में कान्यकुब्ज राज्य था । वहाँ की प्रजा व नृपतिगण भी बौद्ध धर्म को खूब सम्मानित करते थे । यह बात जयचन्द्र के दादा (गोविन्दचन्द्र) द्वारा जेतवन-विहार को पाँच गाँवों के दान-पत्र व उनकी रानी कुमारदेवी के बनवाये हुए सारनाथ के महान बौद्धमन्दिर () से मालूम होती है ।"[4]

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकालना असंगत न होगा कि मध्यकाल तक देश का पूर्वी एवं दक्षिणी भाग बौद्ध धर्म का प्रमुख क्षेत्र रहा । आज नयी शोधों से यह तथ्य स्पष्ट होता जा रहा है कि बौद्ध धर्म कभी भी इस देश से पूरी तरह लुप्त नहीं हुआ, अपितु अपने अवशेषों के साथ नये-

---

1- दे0 भक्तिमार्गी बौद्ध-धर्म

2- जयदेव, गीत गोविन्द ।

3- श्री नगेन्द्रनाथ वसु, भक्ति मार्गी बौद्ध-धर्म - (पृ0 95)

4- बुद्ध-चर्या (भूमिका) - (पृ0 13)

नये धर्मान्तरणों एवं रूपान्तरणों के सहारे अपने छद्म रूपों में वह अभी तक समाज में जीवित चला ह आ रहा है। मध्यकाल में बौद्ध-धर्म यदि प्रथम दृष्टि में आने योग्य प्रभावशाली नहीं दिखता तो उसका कारण यह नहीं था कि इनके उत्साह में किसी प्रकार की कमी आ गयी थी या इनका लोप हो गया था। उसका मुख्य कारण यह है कि वह अनेक छद्म रूप धारण कर चुका था। उपर्युक्त विपरीत परिस्थितियों में बौद्ध भग्नावशेषों ने जिन युक्तियों का सहारा लिया उनमें से एक है - धर्मान्तरण और दूसरी है - रूपान्तरण। जिनका विवरण हम आगे दे रहे हैं -

(7) धर्मान्तरण :-

उत्तर भारत में ग्यारहवीं शताब्दी के आस-पास हुए मुसलमानों के आक्रमणों एवं जिहाद अभियानों का व्यापक प्रभाव पड़ा था। यद्यपि इन आक्रमणकारियों ने ब्राह्मण व बौद्ध दोनों को अपने कोप का भाजन बनाया किन्तु बौद्धों को अपेक्षाकृत अधिक हानि हुई थी। मुसलमानों के विनाशक हमलों के बौद्धों पर पड़े संभावित प्रभाव का निरूपण करते हुए म0म0 राहुल सांकृत्यायन लिखते हैं कि - "तुर्कों का प्रहार जरूर इसमें (बौद्धों के पतन में) एक मुख्य कारण था। मुसलमानों के भारत से बाहर मध्य एशिया में जरफ्शां और वक्षु की उपत्यकाओं, फर्गाना और वाह्लीक की भूमियों में बौद्धों का मुकाबिला करना पड़ा था, वैसा संघर्ष उन्हें ईरान और रोम के साथ भी नहीं करना पड़ा था। घुटे चेहरे और रंगे कपड़ों वाले बुत-परस्त (बुद्ध परस्त) भिक्षुवों से वे पहले से ही परिचित थे। उन्होंने भारत में आकर अपने पुराने चिरपरिचित (शत्रुओं) बौद्धों के साथ जरा भी दया नहीं दिखायी। उनके अनेक बड़े-बड़े विहार लूट कर जला दिये, भिक्षुओं के संघाराम नष्ट कर दिये गये। उनके रहने के लिए स्थान नहीं रह गये। देश की उस छिन्नावस्था में कहीं आशा नहीं रह गई और पड़ोस के बौद्ध देश उनका स्वागत करने के लिए तैयार थे।...... बौद्धों के धार्मिक नेता गृहस्थ नहीं, भिक्षु थे इसलिए एक जगह छोड़ कर दूसरी जगह चले जाना उनके लिए आसान था।

बाहरी बौद्ध देशों में जहाँ उनकी बहुत आवभगत थी, वहाँ देश में उनके रंगे कपड़े मृत्यु का वारंट थे। यही कारण था जिससे कि भारत के बौद्ध केन्द्र बहुत जल्दी बौद्ध भिक्षुओं से शून्य हो गये।"[1] मुख्य-मुख्य धर्माचार्य अथवा मठाधीश भाग कर अन्य देशों में चले गये या मार डाले गये। इस कारण बौद्धों की अपार संख्या गडेरिया के बिना असंख्य मेमनों की भाँति थी।[2] अब मुसलमान व ब्राह्मण दोनों धर्मावलम्बी इन्हें अपने-अपने धर्म अपनाने के लिए प्रलोभन दे रहे थे और जब बौद्ध-जनसमूह अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रखने में सक्षम न रहा तो या तो वे हिन्दू धर्म में शरण लेने को विवश हुए या उन्होंने मुसलमान धर्म अपना लिया। इसके अलावा मुसलमानों ने बल प्रयोग द्वारा या धर्म परिवर्तन कराके भी बहुसंख्यक बौद्धों को इस्लाम धर्म में दीक्षित किया।[3]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, "ऐसा जान पड़ता है कि मुसलमानों के आने से पहले इस देश में एक ऐसी श्रेणी वर्तमान थी, जो ब्राह्मणों से असन्तुष्ट थी और वर्णाश्रमों के नियमों की कायल नहीं थी। नाथ पंथी योगी ऐसे ही थे। रमाई पण्डित के "शून्यपुराण" से जान पड़ता है कि इस प्रकार के तांत्रिक बौद्ध उन दिनों मुसलमानों को "धर्म ठाकुर" का अवतार समझने लगे थे। उन्हें यह आशा हो चली थी कि अब पुनः एक बार बौद्ध-धर्म का उद्धार होगा।[4] "शून्यपुराण" के रचयिता रमाई पण्डित §11वीं शताब्दी§ लिखते हैं - "सभी देवताओं ने एकमत होकर इजार पहने। ब्रह्मा ने मुहम्मद का, विष्णु ने पैगम्बर का और महादेव ने आदम का रूप लिया। गणेश गाजी और कार्तिकेय काजी बने। चन्द्र - सूर्य आदि देवगण पजनियाँ बने। स्वयं चण्डिका देवी हया बीबी और

1- बौद्ध संस्कृति : भूमिका - §पृ0 34§

2- श्री नगेन्द्रनाथ वसु, भक्तिमार्गी बौद्धधर्म §भूमिका§ - §पृ0 17§

3- भक्तिमार्गी बौद्ध धर्म §भूमिका§ - §पृ0 17§

4- कबीर §प्रस्तावना§ - §पृ0 9§

पद्मावती नूर बीबी बन गयीं । इसी तरह सभी देवगण मुसलमान वेश-धारण कर जाजापुर आये और देवालय एवं तोरणद्वार आदि को तोड़ने लगे । साथ ही वस्तुओं का बलात् अपहरण करके आनन्द मनाने लगे और पकड़ो-पकड़ो कहने लगे । धर्म के पाँव पकड़ कर रमई पण्डित कहते हैं कि यह बड़ी गड़बड़ मच गयी है ।"[1] इन बौद्ध अनुयायियों की कदाचित् यह धारण बन गई थी कि मुसलमान आक्रमणकारी धर्म ठाकुर (बुद्ध) का अवतार हैं, देवता ब्राह्मणों से रुष्ट होकर मुसलमानों के वेश में उन्हें दण्डित करने आ गये हैं । इस बात से स्पष्ट होता है कि बौद्ध पण्डितों ने मुसलमानों के प्रारम्भिक आक्रमणों का स्वागत किया था । सम्भवत: मुसलमानों को अपने धर्म का उद्धारक मानकर ही बौद्धों ने समूह रूप में मुसलमान धर्म स्वीकार कर लिया था । पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार और बंगाल में थोक के थोक रूप में बसे हुए जुलाहे ऐसी ही किसी अब्राह्मण आस्था-विश्वासवाली निम्न समझी गयी भारतीय जाति के मुसलमान रूप हैं ।[2] विदेशी लेखकों के उल्लेखों से स्पष्ट है कि ब्राह्मण धर्म की बढ़ती लोकप्रियता ने स्थानीय बौद्धों को शंकित कर दिया था और उन्होंने नवागन्तुकों (मुसलमानों) से अभिसन्धि करके देश की परतंत्रता का द्वार उन्मुक्त कर दिया ।[3]

12वीं शताब्दी में मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने केवल 18 घुड़सवार सैनिकों को साथ लेकर पूर्वी प्रान्त के नदिया जिले को जीत कर अपने राज्य की नींव डाली थी । कतिपय इतिहासकारों का विचार है कि उसे यह अप्रत्याशित विजय बौद्धों की सहायता के फलस्वरूप मिली थी ।"[4] बौद्धों को उनकी अंतिम परिणतियों तक ढकेलने में उन मुसलमान आक्रान्ताओं का योगदान आज असंदिग्ध रूप से स्वीकृत है, जिन्हें अपने विरोधियों (ब्राह्मणों) के दमन के लिए पश्चिमी भारत पर आक्रमण करने के लिए बौद्धों ने ही आमंत्रित किया था ।[5]

1- कविता - कौमुदी, सातवाँ भाग, यहाँ दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय पृ0 सं0 264 - 265 से साभार ।

2- डॉ0 रामनाथ शर्मा, श्रेयसाधक कबीर - (पृ0 58 से साभार)

3- डॉ0 रामरतन भटनागर, मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास - (पृ0 13)

4- विस्तार के लिए देखिए - डॉ0 राजदेवसिंह, संत साहित्य की भूमिका (पृ0 56)

5- डॉ0 रामनाथ शर्मा, श्रेयसाधक कबीर - (पृ0 90)

HANSA MEHTA LIBRARY

11वीं से 15वीं शताब्दी के मध्य मुसलमानों के आक्रमणों एवं उनके द्वारा बलात कराये गये धर्म परिवर्तनों का जो ताण्डव चल रहा था उसके फलस्वरूप बौद्ध धर्मानुयायी आत्म-रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ थे । इसके लिए स्वेच्छा अथवा परवश उन्हें या तो धर्मान्तरण करके इस्लाम धर्म में दीक्षित होना था, या फिर किसी प्रकार हिन्दू समाज में अपना स्थान खोज लेना था । कोई तीसरा भय-मुक्त विकल्प उनके समक्ष नहीं था ।[1] उन्होंने जो धर्मान्तरण किया वह मुख्यरूप से इस्लाम स्वीकार करने के रूप में था । मध्यकालीन अधिकांश सूफी सन्त एवं कबीर, दादू, रज्जब आदि निर्गुणियां सन्त उक्त धर्मान्तरण को स्वीकार करने वाले समुदाय से सम्बद्ध थे । हिन्दू बनने के लिए धर्मान्तरण का अवकाश नहीं था, अतः उन्होंने रूपान्तरण का सहारा लिया ।

18। रूपान्तरण :-

जैसा कि हम पहले संकेत कर चुके हैं कि बंगाल में बौद्ध तांत्रिकों का सर्वाधिक प्रभाव था । वहाँ के पाल - शासकों के संरक्षण में यह धर्म खूब फला-फूला भी । किन्तु 11वीं 12वीं शताब्दी में जब सेनवंश का वहाँ राज हुआ तो बौद्ध-धर्म उतना प्रभावशाली अब न रह सका, क्योंकि सेन राजा कट्टर हिन्दू थे और बौद्ध धर्म का उन्होंने बहिष्कार किया था । किन्तु अब परिस्थितियाँ बिल्कुल विपरीत थीं । संघारामों और विहारों में इन्हें आश्रय देने और जागीरें देने के बदले तत्कालीन राजसत्ता हाथ में खड्ग लेकर इनका पीछा कर रही थी ।[2] अतः रूपान्तरण की युक्ति के अन्तर्गत अब बौद्धों ने थोड़े-बहुत फेर-बदल के साथ अपने देवी देवताओं को हिन्दू देवी-देवताओं के नाम दिये ।

बौद्ध-धर्म के अवशेषों में से सहजिया धर्म निकला । यही सहजिया धर्म जब परिस्थितियोंवश वैष्णव सहजिया नाम धारण करके सामने आया तो अब उन्हें

1- डॉ० रामनाथ शर्मा, श्रेय साधक कबीर - (पृ० 92)

2- डॉ० रामनाथ शर्मा, श्रेय साधक कबीर - (पृ० 93)

हिन्दू धर्म में घुसने में विशेष असुविधा नहीं हुई । वैष्णव सहजिया नामान्तर होते ही बौद्धों के सारे देवी-देवताओं, अवतारों आदि ने हिन्दू देवी-देवताओं के मुखौटे पहन लिए । किन्तु अपने देवी-देवताओं को हिन्दू देवी-देवताओं के नाम-रूप, वस्त्रालंकार, वाहन एवं अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित करने पर भी वे उनके मूल-स्वरूप को स्मृति पटल से विस्मृत नहीं कर सके, अर्थात् बाह्य रीति से बौद्धों ने हिन्दू धर्म अपना तो लिया किन्तु आन्तरिक मन से बुद्ध के प्रति ही वे आस्थावान थे ।

बौद्ध वाङ्गमय [जातक कथाओं आदि] में बुद्ध को कहीं विष्णु, कहीं शिव, कहीं राम और कहीं कृष्ण आदि हिन्दू-देवताओं व अवतारों के रूप में बताया जाने लगा । बुद्ध को विष्णु का अवतार कह कर बुद्ध व विष्णु की साथ-साथ पूजा की जाने लगी । हर्षवर्धन के समय एक साथ विष्णु और बुद्ध के धार्मिक उत्सव होने लगे थे ।[1] गुप्त काल में बौद्धमत विष्णु व शिव के सम्प्रदायों में धीरे-धीरे डूबने लगा था ।[2] हिन्दू सभ्यता अब पुरानी वैदिक सभ्यता नहीं रह गयी थी, उसमें अब नाना भाँति के उपादान आ मिले थे । बौद्ध-धर्म का दु:खवाद, वैराग्यवाद, मूर्तिपूजा इत्यादि बातें हिन्दू-धर्म की अपनी चीजें हो चुकी थी ।[3] निश्चित है कि बारहवीं शताब्दी में विलयन प्रक्रिया बड़ी तेजी से गतिशील थी और बौद्ध तथा हिन्दू साधनाएँ तंत्र-मंत्र, ध्यान, पूजोपचार एवं प्रतीकों के क्षेत्र में घुली-मिली चल रही थी ।[4]

एक तरह से चौदहवीं पन्द्रहवीं शताब्दियाँ बौद्ध-धर्म के उन्नयन की शताब्दियाँ हैं, जब वैष्णव धर्म से सम्बन्धित नये आन्दोलनों का सूत्रपात होता है और बौद्ध

1- डॉ0 विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि - [पृ0 28]
2- डॉ0 विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि - [पृ0 28]
3- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, सूर साहित्य - [पृ0 57 - 58]
4- डॉ0 रामरतन भटनागर, मध्यकालीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास - [पृ0 15]

संस्कार हिन्दू संस्कारों का रूप ग्रहण कर लेते हैं ।[1] जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, बौद्धों ने हिन्दू देवी-देवता अपनाए । गणेश, सरस्वती, कभी-कभी विष्णु भी उनके तंत्रों में मिलते हैं । "करण्डव्यूह" में बोधि सत्व अवलोकितेश्वर यह कहते हैं कि वे शिव, विष्णु, गणेश और माता-पिता का भी रूप धारण करेंगे और लोक का त्राण करेंगे ।[2]

उड़ीसा के पंच सखाओं की परम्परा के अन्तर्गत आने वाले बलरामदासकृत "विराट-गीता" में कृष्ण से अर्जुन ने प्रश्न किया कि - "आप तो शून्यरूप, शून्य-शरीर हैं फिर आपका दैत्यारि नाम कैसे पड़ा ?" कृष्ण उत्तर में कहते हैं कि - शून्य ही में मेरा आश्रय है, जब मैं इस शरीर को त्याग देता हूँ, शून्याकार ही हो जाता हूँ । यही शून्य मेरा असली नाम है, मैं स्वयं सोच नहीं पाता कि कहाँ और कैसे मुझे यह (दैत्यारि) नाम दिया गया ।[3]

तोर शून्य रूप शून्य देह । किना दैत्यारि नाम व्यूह ।।
मोहन शून्य रे विश्राम । से ठारे कहु अच्छि नाम ।।
मोती सन्देह लगिला । काँहुती नाम जात हेला ।।
(विराट गीता)

इस तरह यह सोलहवीं शताब्दी का कवि बुद्ध को कृष्ण के रूप में रूपान्तरित करके काव्य रचना करता है ।

मध्यकाल में बौद्धों के अवशिष्ट अनुयायियों के छद्मवेश धारण करने की जो सामान्य प्रवृत्ति चल रही थी, उसी के अन्तर्गत अच्युतानन्ददास कृत "शून्य संहिता" की यह उक्ति भी अवलोक्य है[4] -

---

1- डॉ० रामरतन भटनागर, मध्यकालीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास - (पृ० 12)
2- डॉ० धर्मवीर भारती, सिद्ध साहित्य - (पृ० 131)
3- श्री नागेन्द्रनाथ वसु, भक्तिमार्गी बौद्ध धर्म - (पृ० 69)
4- श्री नागेन्द्रनाथ वसु, भक्तिमार्गी बौद्ध धर्म - (पृ० 146)

32

"नागान्तक वेदान्तक योगान्तक येते ।
नाना प्रति विहिरे कहिले तोष चिते ।।
गोरखनाथइक विधा वीर सिंह आज्ञा ।
मल्लिका नाथइक योग बाउली प्रतिक्षा ।।
लोहिदास कपिलइक साक्षिमंत्र येते ।
कहिले जे येमन्त से होइछि गुप्ते ।।

(अध्याय 10)

अर्थात् नागान्तकों (माध्यमिक), वेदान्तकों (सौत्रान्तिकों) तथा योगान्तकों (योगचार के अनुयायी) सभी ने अपने-अपने धर्मों के आचरण सम्बन्धी नियम-उपनियमों का निरूपण पूर्ण सच्चाई से किया है । गोरक्षनाथ की विधा, वीर सिंह के आदेश, मल्लिकानाथ की योग-पद्धति, बाउलों के सिद्धान्त, लोहीदास तथा कपिलद्वारा चलाये गये मंत्र से सब लुप्त हो गये हैं ।

श्री नागेन्द्रनाथ वसु के अनुसार - "तात्पर्य यह है कि यह सभी सदा जीवित एवं सक्रिय थे, किन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण गोपनीयता का आश्रय लेने के लिए बाध्य किये गये या हुए थे ।"[1]

(9) सारांश :

पूर्व मध्यकाल में प्रवर्तित धर्मान्तरण व रूपान्तरण की उपर्युक्त प्रवृत्ति से मुसलमान व हिन्दू दोनों समाज प्रभावित हुए । धर्मान्तरण करके जो बौद्ध भग्नावशेष इस्लाम के अनुयायी बने, उन्होंने इस्लाम को अपनाया अवश्य, किन्तु उनका अन्तर्जगत् हिन्दू संस्कारों से या हिन्दू मान्यताओं से सर्वथा निर्लिप्त नहीं हो सका । यही कारण है कि हठयोग के प्राचीन साधकों में अनेक साधक मुसलमान थे।

1- श्री नागेन्द्रनाथ वसु, भक्तिमार्गी बौद्ध धर्म - (पृ0

तत्पश्चात् निर्गुणियाँ सन्तों में कबीर, दादू, रज्जब आदि ऐसे ही मुसलमान थे। सूफी साधकों में से भी अनेक ऐसे ही मुसलमान थे जिनके परिवार में एक दो पीढ़ी पहले इस्लाम धर्म स्वीकार किया गया था। इसलिए उनकी साधना में हठयोग और चिन्तन में ब्रह्मवाद अथवा मोक्ष का समावेश पाया जाता है।

बौद्ध भग्नावशेषों का रूपान्तरण वैष्णवों के रूप में हुआ जैसा हम देख चुके हैं। आगे के वर्णन से अधिक स्पष्ट हो जायेगा कि बौद्ध सहजिया कालान्तर में वैष्णव सहजिया हो गए। तदनन्तर वे वैष्णव हो गये और परम्परागत वैष्णव में घुलमिल गए। मध्यकालीन कृष्णभक्ति के सभी प्रमुख सम्प्रदाय प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से बौद्ध परम्पराओं से सम्बद्ध रहे।

इस प्रकार मूल बौद्ध धर्म प्राय: लुप्त सा हो गया। किन्तु जैसा कि डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं - "लोप का अर्थ यह नहीं कि वह एकदम उड़कर अन्यत्र चला गया था। असल में वह पुनरूज्जीवित हिन्दू धर्म में ही घुलमिल गया था।"[1] अत: बँगाल के इतिहास से यह बात अलग नहीं की जा सकती कि बौद्ध धर्म के ह्रास होते ही महायान शाखा के नाना पंथ वैष्णवों में शामिल हो गए थे।[2] इस प्रकार बौद्ध धर्म के भारत से लोप हो जाने की बात सत्य के उतने निकट नहीं है, जितनी यह बात कि बौद्ध धर्म विशेष परिस्थितियों के कारण धर्मान्तरण और रूपान्तरण करके मध्यकाल में तो जीवित था ही, हिन्दुओं और मुसलमानों के विविध समुदायों में आज भी खोजा जा सकता है।

उक्त परिस्थितियों के फलस्वरूप मध्यकालीन कृष्णभक्ति काव्य पर बौद्ध-धर्म का प्रभाव खोजने का हमारा प्रयत्न अप्रासंगिक नहीं कहा जा सकता।

अत: आगे के अध्याय में हम बौद्ध धर्म के सैद्धान्तिक (दार्शनिक) पक्ष एवं साधना पक्ष के उत्तरोत्तर विकासक्रम का संक्षिप्त परिचय देंगे।

1- सूर साहित्य - (पृ० 57 - 58)

2- सूर साहित्य - (पृ० 93)